(समयसार) पुण्य-पाप अधिकार (की) पहली गाथा, १४५।

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं।
कह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि।।१४५।।

है कर्म अशुभ कुशील अरु जानो सुशील शुभकर्म को!
किस रीत होय सुशील जो संसार में दाखिल करे?।।१४५।।

इस गाथा में शुभाशुभकर्म के स्वभाव का वर्णन (किया जाता है)। शुभाशुभकर्म का वर्णन, ऐसा है, हों! भाव का पाठ नहीं, इसलिए कितने ही लोग कहते हैं न! यह तो कर्म की बात है... परन्तु अमृतचन्द्राचार्य इसमें से चार बोल निकालेंगे।

टीका : किसी.. व्यवहार के पक्षवाले **कर्म में शुभ जीव परिणाम निमित्त होने से..** क्या कहा? कि जो कर्म बन्धन होता है, उसे **शुभ जीव परिणाम निमित्त होने से और किसी में अशुभ जीवपरिणाम निमित्त होने से कर्म के कारणों में भेद होता है;..** ऐसा व्यवहारनयवाले का एक पक्ष है। आहा! **(अर्थात् कारण भिन्न-भिन्न है),..** पुण्य बँधे, उसमें शुभभाव (कारण) होता है और पाप बँधे, उसमें अशुभभाव (कारण)

होता है; इसलिए अज्ञानी-व्यवहारनयवाला (ऐसा कहते हैं कि) दो बन्ध के कारण में दो भेद है, इसलिए दो चीज़ अलग है-ऐसा व्यवहारवाले का पक्ष है।

कोई कर्म शुभ पुद्गल-परिणाममय.. उसके परिणाम की बात पहले की है कि पुण्य बँधता है, उसमें शुभभाव निमित्त है; पाप बँधता है, उसमें अशुभभाव निमित्त है; अतः परिणाम में भेद है - ऐसा व्यवहारनयवाले का पक्ष है। यहाँ यह कहते (हैं) कि **कोई कर्म शुभ पुद्गल-परिणाममय..** अब बन्धन की बात हुई। पहले परिणाम की बात थी। **कोई कर्म शुभ पुद्गल-परिणाममय और कोई कर्म अशुभ पुद्गलपरिणाममय होने से..** ऐसा कि बन्धन में अन्तर है। कोई शुभ पुद्गलकर्म बँधता है और किसी में अशुभ है। आहाहा! इसलिए भेद है - ऐसा व्यवहारनयवाले का पक्ष है। आहा! इस कारण कर्म बन्धन के **स्वभाव में भेद होता है;..** ऐसा। एक में साता बँधती है; एक में असाता बँधती है; इसलिए कर्म के स्वभाव में-बन्ध में अन्तर है - ऐसा व्यवहारनयवाले का पक्ष है।

किसी कर्म का शुभ फलरूप और किसी का अशुभ फलरूप विपाक होने से.. आहाहा! **कर्म के अनुभव में (स्वाद में) भेद होता है;..** (अर्थात्) कर्म के फल के स्वाद में भेद है। सातावेदनीय से मिली हुई चीज़, उसका स्वाद अलग होता है, शुभ फल है; असाता के उदय से रोगादि आवें, उसके फल में (स्वाद दूसरा होता है।) आहाहा! पहले में (शुभभाव का) शुभफल है और उसमें (अशुभभाव का) अशुभ फल-विपाक है; अतः फल में अन्तर है। बन्धन के कारण में अन्तर है, बन्धन के पुद्गलपरिणाम के स्वभाव में अन्तर है और उसके फल में अन्तर है - ऐसी व्यवहारनय के पक्षवाले ने तीन बातें की हैं।

(अब) व्यवहारवाले का चौथा पक्ष (कहते हैं) **कोई कर्म (शुभ (-अच्छे) मोक्षमार्ग के) आश्रित होने से और कोई कर्म अशुभ (-बुरे) बन्धमार्ग के आश्रित होने से कर्म के आश्रय में भेद होता है। (इसलिए) यद्यपि (वास्तव में) कर्म एक ही है तथापि...** परमार्थ से कर्म एक ही है। वह शुभ ऐसे मोक्षमार्ग के आश्रित है न! वहाँ आगे 'मोक्षमार्ग के आश्रित' का अर्थ 'फूलचन्दजी' ऐसा करते हैं। यहाँ वह नहीं (कहना है)।

(वास्तव में) कर्म एक ही है, तथापि कई लोगों का ऐसा पक्ष है कि कोई

कर्म शुभ है और कोई अशुभ है। परन्तु वह (पक्ष) प्रतिपक्ष सहित है। (अर्थात् कि) इस पक्ष का विरोधपक्ष है। निश्चय है, वह व्यवहार का विरोधपक्ष है। आहाहा! **वह प्रतिपक्ष (अर्थात् व्यवहारपक्ष का निषेध करनेवाला निश्चयपक्ष) इस प्रकार है:–** आहाहा!

शुभ या अशुभ जीवपरिणाम... पहला कहता था कि बन्धन के परिणाम में अन्तर है। एक में शुभ परिणाम है और एक में अशुभ (परिणाम) है। उसके उत्तर में निश्चय से (एक प्रतिपक्ष प्रस्तुत करते हैं कि) **शुभ या अशुभ जीवपरिणाम केवल अज्ञानमय होने से एक हैं;...** आहाहा! चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो, वह अज्ञान है अर्थात् उनमें ज्ञानस्वभाव का अंश नहीं है। आहा! जो चैतन्यस्वभाव है। शुभ-अशुभभाव में ज्ञानस्वरूपी भगवान के अंश का उनमें अभाव है; इस कारण वे अज्ञान हैं। शुभ-अशुभ दोनों परिणाम अज्ञान हैं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा वह भी अज्ञान है, कहते हैं। अभी कहेंगे। क्योंकि उनमें ज्ञानस्वरूप प्रभु, जो ज्ञायकस्वभाव तत्त्व, इसका उनमें अभाव है। उसकी जो ज्ञान की निर्मल पर्याय चाहिए, वह उनमें (शुभ-अशुभभाव में) नहीं है; इस कारण वे अज्ञान हैं। शुभ-अशुभ दोनों ही परिणाम अज्ञान हैं। अज्ञान है अर्थात् मिथ्यात्व है-ऐसा नहीं। वह तो फिर उन्हें अपना माने तो मिथ्यात्व है, परन्तु वे स्वयं अज्ञान हैं (अर्थात् कि) उनमें ज्ञानस्वरूप का-चैतन्यस्वरूप का अभाव है। आहाहा!

और उनके एक होने से कर्म के कारणों में भेद नहीं होता;... तूने कारण में परिणाम में भेद कहा, परन्तु हम कहते हैं कि दोनों परिणाम एक (हैं), अज्ञान हैं, उनमें कुछ भेद नहीं है। आहाहा! बन्ध के कारण में शुभ-अशुभ दोनों परिणाम, जीव के चैतन्यस्वभाव के विरुद्ध होने से वे अज्ञान हैं, इसलिए तू परिणाम में अन्तर मानता है, ऐसा नहीं है; दोनों अज्ञान है। आहाहा! फिर **अज्ञानमय** कहा है, हों!

भगवान ज्ञानमय प्रभु है, जबकि शुभाशुभपरिणाम अज्ञानमय है, क्योंकि इसकी जाति से वे विरुद्ध जाति है। आहाहा! **इसलिए कर्म एक ही है। शुभ या अशुभ पुद्गलपरिणाम केवल पुद्गलमय होने से (एक है;...)** तू कहता है कि एक पुद्गल सातावेदनीय का स्वभाव है और असाता (वेदनीय) आदि का स्वभाव (- यह दोनों में) भेद है, तो हम कहते हैं कि **शुभ या अशुभ पुद्गलपरिणाम..** दोनों **केवल पुद्गलमय होने से..** भले साता बँधे या असाता बँधे, आहाहा! **पुद्गलमय होने से एक है;..** यह

किसकी बात हुई? बन्धन की। पहले बन्धन के कारण की बात थी। (व्यवहार के पक्षवाले ने यह कहा कि) बन्धन के कारण में अन्तर है। तब (आचार्य महाराज) कहते हैं कि दोनों में अन्तर नहीं है, दोनों अज्ञान है। तब उसने ऐसा कहा कि पुद्गल के बन्धन में अन्तर है - एक में साता (वेदनीय बँधती है)। पुद्गल का स्वभाव अलग जाति है। एक में यशकीर्ति बँधती हे, एक में अपयशकीर्ति बँधती है। आहाहा! उसके-पुद्गल के स्वभाव में अन्तर है—ऐसा व्यवहारनयवाले का पक्ष था, उसे यहाँ तोड़ा है।

शुभ या अशुभ पुद्गलपरिणाम केवल पुद्गलमय होने से एक (ही) है;.. आहाहा! **उसके एक होने से..** बन्धन, हों! **कर्म के स्वभाव में भेद नहीं होता;..** इसलिए कर्म के स्वभाव में भेद (नहीं है।) पुद्गलमय है, इसलिए कर्म के स्वभाव में भेद नहीं है। चाहे तो साता बँधे या असाता बँधे; यशकीर्ति बँधे या अपयशकीर्ति बँधे; मनुष्यगति बँधे या पशुगति बँधे या देवगति बँधे। आहा! परन्तु (जो) बँधती है, वह पुद्गलमय है। आहाहा! उसमें चैतन्य की जाति कहीं नहीं आयी; इसलिए तू पुद्गल के स्वभाव में भेद कहता है - ऐसा नहीं है। दोनों पुद्गलमय है, इसलिए पुद्गल का स्वभाव है। आहाहा! **उसके एक होने से कर्म के स्वभाव में भेद नहीं होता; इसलिए कर्म एक ही है।**

चौथा - **शुभ या अशुभ फलरूप होनेवाला विपाक केवल पुद्गलमय होने से..** क्या कहते हैं? कि शुभ का फल आवे - ऐसे सातावेदनीय के संयोग-पैसे, लक्ष्मी, शरीरादि; असाता के उदय में रोगादि (आवें) परन्तु वह सब पुद्गलमय कर्म होने से केवल **एक (ही) है..** शुभ-अशुभ के फलरूप होता यह सब विपाक केवल पुद्गलमय है। आहाहा! चाहे तो रोग हो या चाहे तो निरोग हो, यह सब पुद्गलमय है। इसके फल में तुझे अन्तर दिखता होवे (तो कहते हैं कि) इसके फल में अन्तर नहीं है।

उसके एक होने से कर्म के अनुभव में (-स्वाद में) भेद नहीं होता;.. सातावेदनीय में सुख का वेदन आता है, असाता में दुःख का (वेदन) आता है - ऐसा अज्ञानी कहता है। यहाँ कहते हैं कि दोनों का स्वाद बुरा है-खोटा है; स्वाद में अन्तर नहीं है। आहाहा! सातावेदनीय के कारण प्राप्त लक्ष्मी-करोड़ों, अरबों रुपये और असाता के कारण प्राप्त निर्धनता, दरिद्रता, रोग - यह फल में अन्तर हैं न!-ऐसा अज्ञानी का पक्ष है। आहाहा! (तो कहते हैं कि) फल में जरा भी अन्तर नहीं है। ये दोनों पुद्गल की बातें हैं

सब। आहाहा! **(–स्वाद में) भेद नहीं होता; इसलिए कर्म एक ही है।**

शुभ (–अच्छे) मोक्षमार्ग केवल जीवमय है, इसमें **शुभ (–अच्छे) मोक्षमार्ग..** यहाँ **शुभ** शब्द से शुद्ध; शुभ अर्थात् अच्छा; अच्छा अर्थात् शुद्ध – ऐसा वहाँ अर्थ लेना। **शुभ (अच्छा) ऐसा मोक्षमार्ग..** क्योंकि पुण्य और पाप दोनों भाव अशुभ हैं और यह मोक्षमार्ग है, वह शुभ है। यह शुभ है, वे शुभाशुभ दोनों परिणाम तो अशुभ हैं। आहाहा! तब मोक्षमार्ग, वह शुभ है। शुभ है अर्थात् अच्छा है; अच्छा है अर्थात् शुभाशुभभाव से रहित है। आहाहा! आहाहा! ऐसे **मोक्षमार्ग केवल जीवमय है** – ऐसा लिया है न? इसमें कहाँ (शुभभाव को मोक्षमार्ग कहा है?) शुभराग को (मोक्षमार्ग) कहे तो वहाँ (तो उसे) अज्ञान कहा है। यदि शुभ का अर्थ यहाँ शुभभाव (होवे तो) मोक्षमार्ग केवल जीवमय (है) – यह बात मेल नहीं खाती। आहाहा! लोगों को (विपरीत) पकड़ हो जाती है, फिर बदलना कठिन पड़ता है, आकरा (कठिन) पड़ता है।

यहाँ तो कहते हैं कि शुभ अर्थात् कि जो निश्चयमोक्षमार्ग है – सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—वह शुद्ध चैतन्यस्वरूप के अवलम्बन से होता है, उसे यहाँ शुभ कहा जाता है, उसे ही भला कहा जाता है। शुभ और अशुभ दोनों परिणाम भले नहीं हैं, बुरे हैं। आहाहा! आहाहा!

अब, अन्य लोग टीका (आलोचना) करते हैं, ऐसा कि तुमने पुण्य को विष्ठा (कहकर) हल्की उपमा दी है। 'उत्तराध्ययन' का पहला अध्ययन है न? उसमें बोल है, वह आ गया था। अत्यन्त हल्की उपमा दी है। यहाँ तो कहते हैं कि जहर है और अज्ञान है। शुभ और अशुभभाव दोनों अज्ञान हैं; और मोक्षमार्ग (मोक्ष अधिकार-समयसार) में तो कहते हैं कि जहर है, भला नहीं है। शुभ-अशुभभाव—दोनों भले नहीं हैं; भला तो एक आत्मा का शुद्ध मोक्षमार्ग (है, वह भला है)।

आत्मा चिदानन्द प्रभु के आश्रय से निश्चयमोक्षमार्ग (प्रगट होता है)। निश्चय क्यों (कहा)? कि उस राग की अपेक्षा से (कहा), वरना पर्याय अपेक्षा तो उसे व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! परन्तु पर्याय की अपेक्षा से जो व्यवहार कहा जाता है, वह राग की अपेक्षा से निश्चय है। उसे यहाँ भला कहा है। भला, यहाँ शुभभाव को भला कहा है – ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : जो संसार में प्रवेश कराये, उसे भला कैसे कहा जाए?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु संसार में भटके, उसे (भला) कैसे कहा जाए? उसके लिए तो गाथा है। **'कथं तद्भवति सुशीलं यत्संसारं प्रवेशयति।'** उसका तो यह अर्थ है। आहाहा! जिससे भव मिले, उसे अच्छा कैसे कहा जाए? आहाहा! अच्छा तो मोक्ष का मार्ग है कि जिससे मोक्ष होता है, उसे अच्छा, भला और शुभ कहा जाता है। शुभ वह है। मोक्ष, जो त्रिकाली केवलज्ञान, वह जिससे प्राप्त हो - ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग, वह शुभ है; बाकी शुभाशुभपरिणाम, वे दोनों अशुभ और अज्ञान हैं। आहाहा! इसमें तो ऐसी स्पष्टता पड़ी है। लोगों को पक्ष हो जाता है न! और एक बार, दो बार बोला गया हो फिर सिर फिरना (मान्यता बदलना) कठिन पड़ती है। ऐसा नहीं कि भई! मेरी भूल हुई थी, उसमें क्या है?

शुभ अर्थात् मोक्षमार्ग। यहाँ शुभ अर्थात् पुण्य को मोक्षमार्ग व्यवहार (कहना है) - ऐसा नहीं है। शुभ अर्थात् यह शुभ (भावरूप) व्यवहारमोक्षमार्ग, वह नहीं। यहाँ तो शुभ अर्थात् निश्चयमोक्षमार्ग, जो निश्चय वीतरागी पर्याय (प्रगट हुई, वह शुभ है)। जो जिनस्वरूपी प्रभु के आश्रय से हुई जिनदशा, वह वीतरागीदशा मोक्षमार्ग है, उसे यहाँ शुभ कहा गया है। आहाहा! उसे यहाँ भला कहा गया है, उसे यहाँ अच्छा कहा गया है। सामने है न! पाठ सामने पड़ा है न! आहाहा!

और अशुभ (-बुरे) बन्धमार्ग.. देखो! शुभ-अशुभ दोनों भाव अशुभ हैं। आहाहा! व्रत-अव्रत के परिणाम, दया-दान के परिणाम, प्रभु की भक्ति के परिणाम... आहाहा! कहते हैं कि ये दोनों अशुभ हैं। **अशुभ (-बुरे) बन्धमार्ग केवल पुद्गलमय है..** आहाहा! बन्धमार्ग तो केवल पुद्गलमय होने से; मोक्षमार्ग केवल जीवमय होने से - ऐसा उसके सामने लेना। मोक्षमार्ग केवल जीवमय होने से; अकेला आनन्द का सागर प्रभु की निर्मलदशा, वह केवल जीवमय है; उसमें पुद्गल का कोई अंश नहीं है। आहाहा! और बन्धमार्ग तो केवल पुद्गलमय होने से.. बन्धमार्ग अकेला पुद्गलमय है। आहाहा! ऐसा है।

इसलिए वे अनेक (-भिन्न-भिन्न; दो) हैं;.. भिन्न-भिन्न दो हैं। मोक्षमार्ग भला, एक, जीवमय है और पुद्गलमय बन्धमार्ग दूसरा - ऐसे दो हैं; दोनों एक नहीं हैं - ऐसा (कहते हैं)। आहाहा! क्या कहा? भला-ऐसा मोक्षमार्ग, केवल जीवमय होने से

(अर्थात्) शुद्ध चैतन्य की निर्मल परिणति होने से वह भला और अच्छा कहा गया है और शुभ कहा गया है तथा जो बन्धमार्ग है, वह केवल पुद्गलमय होने से, आहाहा! यह शुभाशुभ परिणाम केवल बन्धमार्ग, केवल पुद्गलमय होने से.. शुभाशुभ परिणाम, हों! वे केवल पुद्गलमय होने से, आहाहा!

दया, दान, व्रत, भक्ति (के) परिणाम हों या हिंसा, झूठ, चोरी आदि के परिणाम हों, दोनों बन्धमार्ग तो केवल पुद्गलमय होने से, आहाहा! **वे अनेक (-भिन्न-भिन्न; दो) हैं;..** अर्थात् कि अच्छा-ऐसा मोक्षमार्ग और खराब - ऐसा बन्धमार्ग। अच्छा - ऐसा मोक्षमार्ग जीवमय (और) खराब - ऐसा बन्धमार्ग अजीव-पुद्गलमय - ऐसे दो हैं। दोनों में (शुभाशुभ में) यह एक ठीक और एक अठीक - ऐसे भाग नहीं हैं। आहाहा!

और उनके अनेक होने पर भी कर्म तो केवल पुद्गलमय-बन्धमार्ग के ही आश्रित होने से.. देखो! **अनेक होने पर भी कर्म तो केवल पुद्गलमय-बन्धमार्ग के ही आश्रित..** है। मोक्षमार्ग के आश्रित जरा भी आंशिक राग या बन्ध नहीं है। आहाहा! **अनेक होने पर भी..** यह अनेक अर्थात् (क्या?) जीवमय मोक्ष का मार्ग—निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह भला; तथा उससे विरुद्ध पुण्य और पाप का पुद्गलमय बन्धमार्ग, वह तो पुद्गलमय है, वह जीवमय नहीं। आहाहा!

मोक्षमार्ग और बन्धमार्ग - दो / अनेक होने पर भी, **कर्म केवल पुद्गलमय-बन्धमार्ग के ही आश्रित..** है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! कर्म तो इस पुण्य-पाप के आश्रित कर्मबन्धन है; मोक्षमार्ग के आश्रित बन्ध नहीं है। बन्ध का आश्रय मोक्षमार्ग नहीं है; बन्ध का आश्रय बन्धमार्ग है। आहाहा! ऐसी बात है। दुनिया को कठिन पड़ती है।

लाखों, करोड़ों रुपये खर्च करे, मन्दिर बनावे... कितने ही ऐसा कहते हैं कि पैसा खर्चते (हैं)। लो! यह 'शान्तिभाई जवेरी' देखो! कितने खर्च किये! पोने दो लाख रुपये! पन्द्रह दिन में पोने दो लाख (खर्च किये)। आहाहा! एक लाख और साठ हजार तो खर्च किये। स्पष्ट दिखे, दूसरा अन्दर बहुत (खर्च करते थे)। हर रोज देते, मेहमानों को भोजन कराते और... वह पुस्तकें देते। एकम को पुस्तकें 'हंसुभाई' ने दी थी, दूज-तीज को इन्होंने दी थी। जिनके पास नहीं थी (उन्हें) इनकी ओर से (दी)। चारों तरफ में इनका हाथ था।

मुमुक्षु : भोजन था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भोजन में रुपये दिये। पूरे भोजन के ग्यारह हजार रुपये मण्डल को (दिये)। बाकी मण्डल को खर्च तो बड़ा हुआ होगा। चार हजार लोग भोजन करें तो बीस हजार होते हैं, परन्तु इन्हें ऐसा कि किसी को कुछ इसमें देना है? तो इनकी तरफ से इन्होंने ग्यारह हजार दिये। यह तो ठीक, परन्तु बात यह है कि ये दोनों बन्धमार्ग के आश्रय ही शुभाशुभपरिणाम हैं, वह बन्धमार्ग है, वह पुद्गलमय है, अज्ञान है। आहाहा!

उस टीका में आता है कि व्यवहार से अन्तर है, परन्तु व्यवहार से अन्तर है - इसका अर्थ? व्यवहारनय अभूतार्थ है - असत्यार्थ है। आहाहा!

मुमुक्षु : लौकिक में ऐसा कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर से लौकिक-बाहर की अपेक्षा से (कहा जाता है) - उसका अर्थ क्या? वहाँ सत्य कहाँ आया? सत् चिदानन्द प्रभु! पूर्णानन्द का सागर! उसकी जो निर्मल परिणति है, (वह) राग, पुण्य के परिणाम रहित है। वह एक ही मोक्षमार्ग है और उसके आश्रय से बन्ध है नहीं। आहाहा!

वे अनेक (-भिन्न-भिन्न; दो) हैं; और उनके अनेक होने पर भी कर्म केवल पुद्गलमय-बन्धमार्ग के ही आश्रित.. है। आहाहा! देखो! **कर्म के आश्रय में भेद नहीं है;..** कर्म के बन्धन के आश्रय में-अवलम्बन में भेद नहीं; **इसलिए कर्म एक ही है।** आहा! ऐसा स्पष्ट है, फिर भी (लोग) गड़बड़ करते हैं। प्रभु एक ओर शुद्ध चैतन्यमूर्ति!

वहाँ 'पुण्य-पाप अधिकार' में व्रत में भी यह कहा न? चारित्र जो है, वह स्वद्रव्य के आश्रित है। स्वरूपाचरण! स्वयं का शुद्ध चैतन्यघन भगवान, उसके आश्रय से जो स्वरूप का आचरण (हुआ), वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र है और परद्रव्य के आश्रय से जो व्रत, तप आदि, भगवान की भक्ति आदि (होवे), वह तो परद्रव्य के आश्रित है। आहाहा! इसलिए उस परद्रव्य के आश्रय से बन्धमार्ग है। इस स्वरूप के आश्रय से मोक्ष का मार्ग है। आहा! स्वद्रव्य के आश्रय से है, वह मोक्षमार्ग है और परद्रव्य के लक्ष्य से जो होता है, वह परद्रव्य के आश्रय से है, आहाहा! वह बन्धमार्ग है। भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारे

प्रति लक्ष्य करने से तुझे बन्धभाव उत्पन्न होगा, बापा! आहा! तेरा तत्त्व अन्दर भरपूर भगवानस्वरूप है न! वहाँ देख न! वहाँ जा न! वहाँ माल पड़ा है। रागादिक में कुछ माल नहीं, प्रभु! वृथा (है)। आहाहा! वे तो पुद्गलमय हैं। शुभभाव बन्धमार्ग होने से पुद्गलमय है। आहाहा! शुद्धभाव-शुभभाव-भलाभाव-मोक्ष, स्वद्रव्य के आश्रित होने से वह मोक्षमार्ग है। आहाहा! स्वद्रव्य के आश्रित मोक्षमार्ग और परद्रव्य के आश्रित बन्धमार्ग-यह सिद्धान्त! फिर इसके सब भेद किये। आहाहा!

अब इसका स्पष्टीकरण करते हैं - **भावार्थ : कोई कर्म तो अरहन्तादि में भक्ति-अनुराग,..** पंच परमेष्ठी में भक्ति, व्रत, तप.. आहाहा! **जीवों के प्रति अनुकम्पा..** भाव, आहाहा! **कोई कर्म तो अरहन्तादि में भक्ति-अनुराग, जीवों के प्रति अनुकम्पा के परिणाम..** वह बन्ध-शुभराग है। **मन्द कषाय से चित्त की उज्ज्वलता... मन्द कषाय से चित्त की उज्ज्वल इत्यादि शुभ परिणामों के निमित्त से होते हैं और कोई कर्म तीव्र क्रोधादिक अशुभ लेश्या,..** आहाहा! **निर्दयता..** अनुकम्पा हो या निर्दयपना हो, आहाहा! **विषयासक्ति और देव, गुरु आदि पूज्य पुरुषों के प्रति विनयभाव से नहीं प्रवर्तना इत्यादि अशुभ-परिणामों के निमित्त से..** कोई कर्म बँधता है - ऐसा।

कोई कर्म पहले (लिखा) है न? **कोई कर्म तो...** ऐसा। अरिहन्तादि की भक्ति आदि, जीव की अनुकम्पा से, मन्द कषाय से, शुभपरिणामों के निमित्त से; कोई कर्म तीव्र क्रोधादि अशुभ लेश्या आदि और देव-गुरु (के प्रति विनयभाव से न प्रवर्तना इत्यादि) **इस प्रकार हेतु भेद होने से...** (ऐसा) व्यवहारनय के पक्ष से पक्षकार कहता है। है? **हेतु भेद होने से..** बन्धन के हेतु के कारण में भेद होने से; अरहन्तादि की भक्ति में पुण्य बँधता है और निर्दयपने में पाप बँधता है, आहाहा! तो व्यवहारनय के पक्षवाला कहता है कि ऐसा हेतु का भेद है। **कर्म के शुभ और अशुभ दो भेद हो जाते हैं।** आहाहा! पहले परिणाम का भेद कहा; यह बन्धन का भेद है। आहाहा!

सातावेदनीय, शुभ-आयु,.. आहाहा! सातावेदनीय बँधे या देव की शुभ-आयु हो, **शुभनाम..** यशकीर्ति, **शुभगोत्र..** उच्च गोत्र **इन कर्मों के परिणामों (-प्रकृति इत्यादि) में तथा चार घातीयकर्म, असातावेदनीय,..** उनके सामने अन्तर है - ऐसा कहते हैं। **चार घातीयकर्म, असातावेदनीय, अशुभ-आयु, अशुभनाम और अशुभगोत्र**

– इन कर्मों के परिणामों (–प्रकृति इत्यादि–) में भेद है;.. ऐसा अज्ञानी का पक्ष है। एक ओर चार घाति का... आहाहा! बन्ध पड़ता है और एक ओर साता का बन्ध पड़ता है। आहाहा! घातिकर्म का बन्ध पड़े और एक ओर साता का बन्ध पड़े, कहते हैं, अन्तर नहीं? इतना बड़ा अन्तर नहीं लगता? कोई अन्तर नहीं है। आहाहा! घातिकर्म का बन्ध पड़ो, साता का पड़ो या यशकीर्ति का पड़ो, आहाहा! परन्तु बन्ध है, वह तो सब पुद्गल का स्वभाव है। आहाहा! यह, 'सोनगढ़ की वाणी है यह? सोनगढ़ से प्रकाशित हुआ, इसलिए (सोनगढ़ की बात हो गयी)? यह तो पहले की बात है। आहाहा!

अशुभगोत्र – इन कर्मों के परिणामों (–प्रकृति इत्यादि–) में भेद है;.. कहाँ सातावेदनीय बँधे और कहाँ दर्शनमोहनीय बँधे! चारित्रमोहनीय बँधे – ऐसा अज्ञानी कहता है कि इसमें तुम्हें अन्तर नहीं लगता? (तो कहते हैं) नहीं; वहाँ दोनों पुद्गल के परिणाम हैं। आहाहा! कारण में भी दोनों अज्ञानमय परिणाम और बन्ध में (भी) साता बँधे या घाति (बँधे), दोनों पुद्गल के परिणाम हैं। ऐसा है। कठिन पड़े ऐसा है।

कर्मों के शुभ और अशुभ दो भेद हैं। कहाँ सातावेदनीय बँधे और कहाँ घातिकर्म! तुम कुछ अन्तर नहीं मानते? हमें तो कितना अन्तर लगता है, कहते हैं। सुन, सुन! अभी उसका प्रश्न है। **किसी कर्म के फल का अनुभव सुखरूप है..** यह कल्पना (है)। अनुकूल देखकर सुख की कल्पना होती है। **किसी कर्म के फल का अनुभव दुःखरूप है..** है तो दोनों दुःखरूप, परन्तु इसने माना है न कि सातावेदनीय के ढ़ेर आना, अरबों रुपयों के ढ़ेर! ऐसे अकेले मखमल के गद्दे और मछमल के बिछोने! लाखों रुपयों के मखमल के ये बिछोने! वहाँ ऐसे (सादा) बिछाये?

आहाहा! अरे..! उस रावण को स्फटिकमणि के बँगले (थे)! स्फटिकमणि की सीढ़ियाँ! स्फटिकमणि की टाईल्स! स्फटिकमणि की टाईल्स! और सातवें नरक अग्नि का (भभका)! आहाहा! यह सातवें नरक की अग्नि की वेदना असाता का फल है और यहाँ स्फटिक की टाईल्स! ऐसे सीढ़ियाँ चढ़ते अन्दर विचार में चढ़ जाए कि यह चढ़ना होता है या पैरे ऐसे जाता है? पैर नीचे दिखता है। आहाहा! भाई! यह सब पुद्गल के परिणाम हैं, बापू! प्रभु! उसमें भगवान कहीं नहीं आया। आहाहा! इन शुभाशुभपरिणाम में प्रभु नहीं आया तो इसके बन्धन और इसके फल में प्रभु कहाँ से आये? आहाहा! आहाहा!

कठिन काम है। (इसका) बड़ा विवाद है न! एक बार पुण्य को विष्ठा कहा, वहाँ तो लोग चिल्ला गये! यहाँ तो (कहते हैं), शुभभाव है, वह पुद्गल है, जहर है।

मुमुक्षु : आत्मा अमृत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह प्रभु अमृत है। अमृत का सागर प्रभु अन्दर डोलता है। आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द का ध्रुव.. ध्रुव.. (धाम) विराजमान है। उसके समक्ष शुभ-अशुभ परिणाम तो जहर है, कहते हैं। आहाहा! वह कहे, तुम इतना बड़ा अन्तर मानो? यह नरक के दुःख और कहाँ स्फटिकमणि के बँगले में रहना! कहाँ सातवें नरक में तैंतीस सागर रहना? बापू! दोनों पुद्गल के परिणाम हैं, भाई! उनमें कहीं आत्मा नहीं आया। आहाहा! उनके फल में अन्तर नहीं है। सातवें नरक का नारकीपना मिले या स्फटिक का बँगला मिले, (उसमें कहीं अन्तर नहीं है)। आहाहा! रावण स्फटिकमणि के (महल में) रहता था! आहाहा! वह मरकर नरक गया। आहाहा! और मुनि जंगल में गर्म तपे हुए पत्थर (पर) बैठे और अन्दर आनन्द के ध्यान में जाए! आहाहा! उन्हें केवलज्ञान हो! आहाहा! अन्दर भगवान का अवलम्बन लिया है। महा प्रभु (विराजमान है)। आहाहा! उसका जहाँ अवलम्बन है, वहाँ मोक्षमार्ग और मोक्ष तो उसकी हथेली में (है)! अन्दर भरा है। आहाहा! शक्ति में है, वह व्यक्ति में (पर्याय में) प्रगट होगा ही। यह पुण्य और पाप के परिणाम शक्ति में कहाँ थे? और उनका बन्धन और फल, वह कहाँ कोई आत्मा का फल है? आहाहा! ऐसा है।

यहाँ तो जरा अनुकूलता हो वहाँ बस! मानों हम सुखी हैं, सुखी हैं और साधारण गरीब व्यक्ति को ऐसा होता है.. मुम्बई में नहीं? क्या कहलाता है? वे उस पर सोते हैं - फुटपाथ! गरीब व्यक्ति सर्वत्र - अहमदाबाद, भावनगर जहाँ हो वहाँ अकेले बाहर पड़े होते हैं; जहाँ मोटर चलती न हो - ऐसी जगह हो न, ऐसे वहाँ बेचारे पड़े होते हैं। आहाहा! यह खाने का कहाँ? पीने का कहाँ? नल का पानी पीना! और गाड़ियाँ खड़ी रहें, उनके पास माँगना; जहाँ गाड़ियाँ खड़ी रहती है न! वह लाल-लाल होता है न! लाल (सिग्नल) आवे वहाँ जब तक (गाड़ी) चले नहीं, तब तक सब भिखारी वहाँ माँगने के लिए इकट्ठे होते हैं। गाड़ियाँ खड़ी रहती हैं न! आहाहा! और कहाँ माँगे वहाँ मिले हजार! कहते हैं कि परन्तु प्रभु! दोनों के फल में अन्तर नहीं है, हों! आहाहा! बापू! तुझे फल में अन्तर लगता है।

अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का फल आवे, प्रभु! उसके पास यह पुद्गल के फल तो अज्ञान का फल है, बन्ध का फल है, वह पुद्गलमय है। उनमें प्रभु नहीं है। आहाहा! और भगवान त्रिलोकनाथ चैतन्य प्रभु का एक जरा-सा आश्रय लिया, वहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आनन्द आया! आहाहा! उस चीज़ के समक्ष यह सब तेरे सुख की साहिबी पुद्गल की जाति और जहर की जाति है। आहाहा! ऐसा है। गरीब हो जाए तो ऐसे दीन हो जाए और पैसा होवे तो ऐसे चले वहाँ... (ऐसे चले)! हमारे 'बोटाद' में (एक) स्वामी नारायण के हिम्मतलाल सेठ थे, उनकी चाल ऐसी थी और चाल.. उनकी नकल दूसरा एक करता था। स्थानकवासी था, वह उनकी कॉपी (नकल) करता था। वह चले, उनके जैसे चले-सेठ जैसा (चले)। आहाहा! क्या है परन्तु यह? ऐसा कि ऐसे नगरसेठ! शरीर मजबूत! लाखों रुपये! बड़ी इज्जत! उसके साथ हम होड़ करें, थोड़ा-थोड़ा तो करें - ऐसा (कहता)। अरे.. प्रभु! किसके साथ होड़ करनी है? यह सब पुद्गल का फल-जहर का फल है, भाई! आहाहा! प्रभु! तेरा आनन्द का सागर, चिन्तामणि रत्न पड़ा है न! आहाहा!

१४६ (गाथा में) दृष्टान्त दिया है। १४६ गाथा है न? (उसकी) जयसेनाचार्यदेव की टीका में (दृष्टान्त दिया है), छाछ के लिए रत्न को बेचता है। १४६ में जयसेनाचार्यदेव की संस्कृत टीका में है। छाछ.. छाछ देखता है, उसमें रत्न को बेच डाले! रत्न को बेचकर छाछ ले!! आहाहा! राख के लिए रत्न का ढेर जलावे! थोड़ी राख चाहिए हो, यह मूँग (जीवांत) पड़ न जाएँ, (इसलिए) डालते हैं न? उस राख के लिए रत्न की राशि-ढेर जलावे! आहाहा! एक धागे के लिए हीरा के हार का चूर्ण कर डाले! जयसेनाचार्यदेव ने चार दृष्टान्त (दिये हैं)। और एक कोदव के लिए चन्दन का वन छेद डाले। चन्दन का वन! जयसेनाचार्यदेव की टीका में चार दृष्टान्त हैं। पहले कहे जा चुके हैं। आहाहा! इसी प्रकार पुण्य के लिए मर जाता है, कहते हैं। आहाहा! राग के-पुण्य के प्रेम में आत्मा का हार जाता है। आहा! जैसे छाछ के लिए रत्न को बेचे, वैसे इस पुण्य परिणाम के प्रेम में पूरा बिक जाता है, सम्पूर्ण आत्मा का अनादर कर डालता है। आहाहा!

राख के लिए रत्न की राशि का ढ़ेर जलाता है, वैसे (ही) एक पुण्य के परिणाम के प्रेम में भगवान महारत्न की राशि है.. आहाहा! उसका यह अनादर करता है। सूत के

धागे के लिए एक हार को चूर्ण कर डालता है, चूर्ण करता है; (इसी तरह) एक शुभभाव के रस में अनन्त रत्न का हीरा प्रभु.. आहाहा! उसे यह जला डालता है, अनादर कर डालता है। आहाहा! कोदव के लिए चन्दन के वन को छेद डालता है। आहाहा! इसी तरह एक शुभपरिणाम के प्रेम में, भगवान चन्दन वृक्ष महाप्रभु! आहाहा! उसका अनादर करता है। आहाहा! साधारण काम नहीं, बापू! यह तो अन्दर की बातें हैं। आहाह! वीतरागमार्ग को सत्यपने, (सत्य) रीति से सुनने को भी महाभाग्य चाहिए। आहाहा! आहाहा! कहाँ चैतन्यरत्न से भरपूर भगवान और कहाँ पुण्य-पाप का अज्ञानभाव! आहाहा! और उसके बन्धन में भी पुद्गल के परिणाम, उसके फल में पुद्गलमय परिणाम और वह बन्ध भी पुद्गल के बन्ध के आश्रय से होता है। मोक्षमार्ग के आश्रय से कोई राग, बन्ध नहीं होता। आहाहा!

आहा! (शुभ-अशुभ के स्वाद में) **अनुभव का भेद होने से कर्म के शुभ और अशुभ दो भेद हैं। कोई कर्म मोक्षमार्ग के आश्रित है...** देखा? यह सामने कहते हैं। मोक्षमार्ग के आश्रित कोई कर्म है। **(अर्थात् मोक्षमार्ग में बँधता है) और कोई कर्म बन्धमार्ग के आश्रित है; इस प्रकार आश्रय का भेद होने से कर्म के शुभ और अशुभ दो भेद हैं।** ऐसा व्यवहारनय के पक्षवाले अज्ञानी मानते हैं। आहाहा! कठिन बहुत!

इस प्रकार हेतु,.. अर्थात् परिणाम। **स्वभाव..** अर्थात् पुद्गल बन्धन। **अनुभव..** अर्थात् उसका फल; **और आश्रय..** अर्थात् बन्ध के आश्रय विकार है; मोक्ष के मार्ग के आश्रय से पुण्य नहीं होता; आत्मा के आश्रय से पुण्य नहीं होता। बन्धमार्ग के आश्रय से पुण्य होता है। आहाहा! **कोई कर्म शुभ और कोई अशुभ है, ऐसा कुछ लोगों का पक्ष है।** आहाहा!

अब इस भेदपक्ष का निषेध किया जाता है :- जीव के शुभ और अशुभ परिणाम दोनों अज्ञानमय हैं... क्या कहते हैं? कि शुभ परिणाम, राग की मन्दता और अशुभ परिणाम, राग की तीव्रता—इतना अन्तर है। यहाँ कहते हैं - **दोनों अज्ञानमय हैं...** यह इसमें पहले आ गया है न? शुभ-अशुभ परिणाम अज्ञानमय है। पहले आ गया है, उसका स्पष्टीकरण करते हैं। **इसलिए कर्म का हेतु एक अज्ञान ही है;...** आहाहा!

कर्म के हेतु के दो परिणाम, प्रकार, दो भेद हैं-ऐसा नहीं है; कर्म का हेतु तो एक अज्ञान ही है। आहाहा! **अतः कर्म एक ही है।**

शुभ और अशुभ पुद्गलपरिणाम दोनों पुद्गलमय ही हैं... (अर्थात्) बन्धन। साता बँधे या असाता बँधे; यश बँधे या अपयश बँधे.. आहाहा! यह शुभ-अशुभ पुद्गलपरिणाम **दोनों पुद्गलमय ही हैं...** इसलिए इन बन्ध के कर्म का स्वभाव **एक पुद्गलपरिणामरूप ही हैं;...** आहाहा! तुम इस पुद्गल परिणाम के स्वभाव में भेद डालते हो (परन्तु) हम कहते हैं कि दोनों पुद्गलपरिणाम हैं। अब इनमें तुम किसका भेद डालते हो? आहाहा!

तब वे छाया और धूप का दृष्टान्त देते हैं। देखो! अव्रत को छोड़कर व्रत में आना। छाया में बैठकर शुद्ध उपयोग की राह देखना.. परन्तु यह तो उसकी बात दूसरी है। यह व्रत के विकल्पों की भूमिका किसे होती है? जिसे सम्यग्दर्शन है और उसमें प्रभु का विशेष आश्रय लिया है, उसे व्रत के विकल्प होते हैं, उसे पुण्यबन्ध होता है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! परन्तु इसको लेकर ऐसा कहते हैं कि अव्रत में रहना, इसकी अपेक्षा व्रत के परिणाम अच्छे, यह किस अपेक्षा से कहा? यह तो सम्यग्दर्शनसहित है और उसमें जहाँ व्रत का विकल्प है, उसे थोड़ी शान्ति बढ़ी है। आहाहा! इस व्रतवाले का व्यवहार और उसका फल साता और स्वर्ग है, छाया है, ऐसा। आहाहा! परन्तु मूल जो उपोद्घात (भूमिका) है, उसे तू देखता नहीं। आहाहा! देखो! अव्रत का फल नरक है। समाधिशतक (में) कहते हैं। व्रत के फल में छाया है, वृक्ष की छाया मिले ऐसे और अव्रत के फल में अग्नि (उष्णता) की धूप है। बापू! दो के अन्तर में यह तो अन्तर शान्ति थोड़ी-सी बढ़ी है न! उसकी भूमिका में शुभभाव है, वह उसे वहाँ पापानुबन्धी पुण्य को छोड़कर पुण्यानुबन्धी पुण्य की बातें की है, परन्तु उस भूमिका के जोर से बात की है। आहाहा! इनने 'विद्यासागर मुनि' ने यह डाला है।

(यहाँ कहते हैं) **कर्म का स्वभाव एक पुद्गलपरिणामरूप ही हैं; अतः कर्म एक ही है। सुखदुःखरूप दोनों अनुभव पुद्गलमय ही हैं...** आहाहा! सातावेदनीय का ढेर पड़ा (हो), चूरमा, लड्डू खाता हो और उसमें जो भाव है, वह तो अशुभभाव है। आहाहा! पुद्गलपरिणाम है। तूने जो सुख माना है, वह सुख नहीं। दोनों अनुभव पुद्गल

का है। आहाहा! **इसलिए कर्म का अनुभव एक पुद्गलमय ही है;...** कर्म के अनुभव में दो भेद डाले कि साता से ऐसे ढेर हों और ठण्डी हवा साता में रहे... आहाहा! इससे निवृत्ति लेकर वहाँ धर्म हो सकता है। शरीर अच्छा होवे तो अमुक (होता है)। यहाँ कहते हैं कि भगवान अच्छा होवे तो धर्म हो सके, एक ही बात है। बाहर में अच्छा (होवे), यह सब पुद्गलमय की बातें हैं।

मोक्षमार्ग और बन्धमार्ग में, मोक्षमार्ग तो केवल जीव के परिणाममय ही है... लो! यहाँ तो यह लिया, वहाँ भी यह लिया। **मोक्षमार्ग तो केवल जीव के परिणाममय ही है...** (है)। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो स्व के आश्रय से हो, उन्हें ही केवल जीव के परिणाम कहा है। शुभ-अशुभभाव, वे जीव के परिणाम नहीं; वे तो अज्ञान, पुद्गल के परिणाम हैं। आहाहा!

बन्धमार्ग केवल पुद्गल के परिणाममय ही है.. मोक्षमार्ग केवल जीव के परिणाम हैं; शुभाशुभ नहीं, शुद्ध (परिणाम)। **और बन्धमार्ग केवल पुद्गल के परिणाममय ही है, इसलिए कर्म का आश्रय मात्र बन्धमार्ग ही है..** मोक्ष के मार्ग के आश्रय से बन्ध है - यह बात बिल्कुल खोटी है। **(अर्थात् कर्म एक बन्धमार्ग के आश्रय ही होता है-मोक्षमार्ग में नहीं होता); अतः कर्म एक ही है।** आहाहा!

इस प्रकार कर्म के शुभाशुभ भेद के पक्ष को गौण करके.. ऐसा कहा। **उसका निषेध किया..** है। जैसे पर्याय को अभूतार्थ कहा था, वह गौण करके अभूतार्थ कहा था। भले है, है अवश्य परन्तु गौण करके उसका निषेध किया है। (उल्टा) निकालना होवे (वह) इसमें से निकाले, निकालना होवे तो। **क्योंकि यहाँ अभेदपक्ष प्रधान है और अभेदपक्ष से देखा जाए तो कर्म एक ही है-दो नहीं।** विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)